प्रयत्नात्=दृढ़ अभ्यास द्वारा; **यतमानः**=प्रयत्नशील; **तु**=किन्तु; **योगी**=योग का अभ्यासी; **संशुद्ध**=भलीभाँति शुद्ध होकर; **किल्बिषः**=संपूर्ण पापों से; **अनेक**=बहुत; **जन्म**=जन्मों से; **संसिद्धः**=पूर्णता को प्राप्त हुआ; **ततः**=उससे; **याति**=पाता है; **पराम्**=परम; **गतिम्**=लक्ष्य को।

अनुवाद

दृढ़ अभ्यास के साथ प्रयत्न करता हुआ योगी अनेक जन्मों के अभ्यास के प्रभाव से संपूर्ण पापों से शुद्ध होकर अन्त में परम गति को प्राप्त हो जाता है।।४५।।

तात्पर्य

शुद्ध, धनवान् अथवा पवित्र कुल में उत्पन्न पुरुष को यह बोध रहता है कि उसे योगाभ्यास के अनुकूल स्थिति की प्राप्ति हुई है। इसलिए वह दृढ़तापूर्वक अपने अपूर्ण कार्य की पूर्ति में लगता है और इस प्रकार संपूर्ण पापों से शुद्ध हो जाता है। पापों की पूर्ण निवृत्ति हो जाने पर ही परमगति—कृष्णभावना की प्राप्ति होती है। कृष्णभावना पापसंशुद्धि की परमोच्च अवस्था है। भगवद्गीता में अन्यत्र भी इसकी पुष्टि है—

येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मनाम्।
ते द्वन्द्वमोह निर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः।।

'अनेक जन्मों तक पुण्यकर्मों को करने से जब कोई सम्पूर्ण पापों और मोहमय द्वन्द्वों से पूर्ण मुक्त हो जाता है, तभी वह श्रीकृष्ण की सेवा के परायण होता है।'

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन।।४६।।

तपस्विभ्यः=तपस्वियों से; **अधिकः**=श्रेष्ठ है; **योगी**=योगी; **ज्ञानिभ्यः**=ज्ञानियों से; **अपि**=भी; **मतः**=माना जाता है; **अधिकः**=श्रेष्ठ; **कर्मिभ्यः**=सकाम कर्मियों से **च**=भी; **अधिकः**=श्रेष्ठ है; **योगी**=योगी; **तस्मात्**=इसलिए; **योगी**=योगी; **भव**=हो; **अर्जुन**=हे अर्जुन।

अनुवाद

योगी पुरुष सब तपस्वियों, ज्ञानियों और सकाम कर्मियों से श्रेष्ठ माना गया है। इसलिए हे अर्जुन! तू सब प्रकार से योगी हो।।४६।।

तात्पर्य

योग का अर्थ है परमसत्य से मति का जुड़ना। साधनविधियों के भेद से इस पद्धति के विविध नाम हैं। जब योगपद्धति प्रधानतः कर्मों से सम्बन्धित हो तो उसे कर्मयोग कहा जाता है; प्रधान रूप में प्रत्यक्ष अनुभव से सम्बन्धित होने पर उसे ज्ञानयोग कहते हैं और जब उसमें श्रीभगवान् से भक्तिभावमय सम्बन्ध की प्रधानता हो तो उसे भक्तियोग कहते हैं। जैसा अगले श्लोक में श्रीभगवान् ने कहा है,